ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI TITLED No. :UPBIL04292,
RNI REG. No.: UPBIL/2014/66218, SOCI.REG. No.: 561/2013-14 Vol.-5, No.-II, PP-228-231,YEAR- DEC.2016

शब्द शक्तिविवेचनम्

❑ डॉ0 विनोद कुमार पाण्डेय

संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि शब्द और अर्थ मिलकर काव्य का निर्माण करते हैं। शब्द त्रिविध प्रकार के हैं– वाचक, लक्षक और व्यन्जक। इसी क्रम में अर्थ भी तीन प्रकार के हैं– वाच्य, लक्ष्य और व्यड्.ग्य। इसके अतिरिक्त कुछ लोग 'तात्पर्यार्थ' को भी मानते हैं। शब्द किस प्रकार अर्थ को प्रकट करता है, इस बात पर विचार करके विद्वानों ने शब्द की त्रिविध शक्तियों का विवेचन किया है। शब्द की ये शक्तियाँ क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यन्जना के नाम से जानी जाती है। अभिधा अर्थात् वाचक का लक्षण आचार्य मम्मट ने इस प्रकार बतलाया है–

"साक्षात् संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः।" अर्थात् जो शब्द साक्षात् संकेत किए गये अर्थ का बोध कराता है– वह वाचक कहलाता है और उसकी बोधिका शक्ति 'अभिधा' कहलाती है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य मम्मट ने बताया कि सांसारिक व्यवहार में जिस अर्थ में संकेत ग्रहण किया जाता है, उस अर्थ की प्रतीति ही उस शब्द से होती है– 'अस्मात् शब्दयमर्थो बोद्धव्यः' अर्थात् इस अर्थ का प्रतिपादक यह शब्द है, यह सामाजिक मान्यता ही संकेत है। बिना संकेत के शब्द, किसी अर्थ का बोध नहीं कराते। अन्वय–व्यतिरेक सम्बन्ध के द्वारा ही यह सुनिश्चित होता है।

अर्थबोध में संकेत का होना अपरिहार्य है– यह अन्वय सम्बन्ध से तथा जिस शब्द का जिस अर्थ में संकेत न हो, वह उसका वाचक नहीं– व्यतिरेक सम्बन्ध से स्पष्ट किया गया है।

साक्षात् का अर्थ है– अव्यवहित होना। 'वटोग्रामः' में वट युक्तत्व' होना व्यवहित संकेतित अर्थ है। मीमांसक शब्द का संकेत जाति में मानते हैं। 'गामानय' में गाय गोत्व जाति से युक्त होने से कोई गाय को ही लायेगा।

इस तरह संकेतित अर्थ जाति, गुण क्रिया तथा यदृच्छा आदि भेदों से चार प्रकार का होता है–

'सकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादि जातिरेव वा'

मीमांसकों के मत में 'केवल जाति' रूप एक ही प्रकार का संकेतित अर्थ होता है इसका अर्थ यह है कि मीमांसक क्रिया तथा यदृच्छा में भी जातिह मानता जबकि आचार्य मम्मट ने जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा रूप धर्मों में संकेतित अर्थों को माना। भले ही आनयन, अपनयन आदि रूप अर्थ क्रिया के निर्वाहक होने से प्रवृत्ति रूप व्यवहार के योग्य व्यक्ति ही होता है, फिर भी 'आनन्त्य' और व्यभिचार दोष आ जाने के कारण उस व्यक्ति में संकेतग्रह मानना उचित नहीं है। 'गौः शुक्लश्चलोडित्थः' में केवल व्यक्ति की उपस्थिति होने पर विषय विभाग नहीं हो सकता। इसलिए व्यक्ति में नहीं अपितु उसकी उपाधि में ही संकेतग्रहण होता है। उपधि दो प्रकार की है– एक वस्तु धर्म, दूसरा– वक्तृयदृछा संन्निवेशित संज्ञा रूप। वस्तुधर्म भी दो प्रकार का है– (1) सिद्ध (2) साध्य। सिंद्ध वस्तु धर्म भी दो प्रकार का होता है– पदार्थ का प्राणप्रद अर्थात् जातिरूप तथा विशेषाधान हेतु अर्थात् गुणरूप।

'गौः शुक्लश्चोडित्थः इत्यादौ चतुष्ट्यी शब्दानां प्रवृत्तिः' इति महाभाष्यकारः' इस प्रकार आचार्य मम्मट ने यह प्रतिपादित किया कि संकेतग्रह व्यक्ति में नहीं बल्कि उसकी उपाधिभूत जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा रूप धर्मों में होता है। वही साक्षात् संकेतित अर्थ मुख्यार्थ है और उसका बोध कराने में इस शब्द का जो व्यावार है, वहीं अभिधा व्यापार या अभिधा शक्ति है।

अब 'लक्षणा' का स्वरूप बताते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं–

'मुख्यार्थ बाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात्।

❑ एसोसिएट प्रोफेसर– संस्कृत विभाग, के0जी0के0 (पी0जी0) कॉलेज, मुरादाबाद (उ0प्र0), भारत

अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया।।'

मुख्यार्थ या वाच्यार्थ का बोध कराने वाली शब्द शक्ति 'अभिधा' है। परन्तु जहाँ कहीं मुख्यार्थ वाक्य को अन्य पदों के साथ अन्वय में बाधा हो या उसमें 'तात्पर्य' की उत्पत्ति न को, वहाँ रूढ़ि या प्रयोजन से मुख्यार्थ से सम्बद्ध जब किसी अन्य अर्थ की प्रतीति होती है तो इस अन्य अर्थ को 'लक्ष्यार्थ' तथा इसकी बोधक शक्ति को 'लक्षण' कहते हैं। इसके तीन हेतु हैं– (1) मुखयार्थ बाध (2) 'तद्योग' अर्थात् मुख्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ सामीप्यादि सम्बन्ध (3) रूढ़ि या प्रयोजन। मुख्यार्थ बाध दो प्रकार का है– अन्वयानुपपत्ति तथा तात्पर्यानुयपत्ति। 'गड.यां घोषः' उदाहरण में प्रवाह का बाध होकर 'तट रूप' अर्थ की प्रतीत 'अन्वयानुपपत्ति' है। तथा 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' उदाहरण में कौओं के साथ–साथ अन्य दहयुपघातकों से दधि की रक्षा तात्पर्य अर्थ से निकलता है, मुख्यार्थ बाध होकर इसलिए यहां तात्पर्यानुपपत्ति ही मानना चाहिए। इसके समर्थन में नागेशभट्ट की टिप्पणी ध्यातव्य है। शक्यसम्बन्धोलक्षणा अन्वयाद्यनुपपत्ति प्रतिसंधानं च लक्षणा बीजम्

लक्षणा का दूसरा हेतु है– तद्योग अर्थात् मुख्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ सामीप्यादि सम्बन्ध तथा तीसरा हेतु है– रूढ़ि या प्रयोजन इसमें रूढ़ि का अर्थ है 'प्रसिद्धि' जैसे 'कर्मणि कुशलः' में कुशलपद दक्ष या प्रवीण अर्थ में रूढ़ हो गया है तथा 'कुशलाना' इस मुख्यार्थ का बाध होकर अर्थ लक्ष्यार्थ है। विवेचकत्व दोनों में उभयनिष्ठ है।

इसी प्रकार 'गगायां घोषः उदाहरण में 'प्रवाह' रूप मुख्यार्थ का बाध होने पर जो 'तटरूप' अर्थ निकल रहा है। वह पवित्रता आदि प्रयोजन विषयक है। यह सामीप्य सम्बन्ध से उत्पन्न अन्य अर्थ ही अर्थात् मुख्यार्थ से निकलने वाला अमुख्यार्थ ही लक्षणा है। वस्तुतः लक्ष्यार्थ का बोधक व्यापार वाच्यार्थ में रहता है, उसका शब्द में आरोप कर लिया जाता है। इस प्रकार मुख्यार्थ बाध, तद्योग तथा रूढ़ि या प्रयोजन से जो अन्य अर्थ लक्षित होता है वह आरोपित व्यापार लक्षणा है।

आचार्य मम्मट के लक्षणा के 6 भेद बतलाये हैं पहला शुद्धा लक्षणा 2. गौणी लक्षणा। पुनः शुद्धा के दो भेद होते हैं पहला उपादान लक्षण दूसरा लक्षणा। इसी प्रकार गौणी के दो भेद हैं पहलर सारोपा दूसरा साध्यावसाना। उपादान का लक्षण करते हुए आचार्य मम्मट बताते हैं–

स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थं स्वसमर्पणम्।
उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा।।

अर्थात् जहाँ शब्द अपने अन्वय की सिद्ध के लिये अन्य अर्थ का आक्षेप कर लेता है और स्वयं भी बना रहे वहाँ 'उपादान लक्षणा' होती है जैसे 'कुन्ताः प्रविशन्ति' इस उदाहरण में कुन्त शब्द भाला रूप अचेतन का वाचक है उसमें प्रवेश किया अन्वित नहीं होती है इसलिए मुख्यार्थ का बाध होने पर कन्त आदि शब्द पुरूष पद का आक्षेप कर लेते हैं इस प्रकार 'कुन्तधारी पुरूष प्रवेश कर रहे हैं' यह अर्थ उपादान लक्षणा से निकलता है।

इसके विपरीत जहाँ वाक्य में कोई शब्द दूसरे शब्द के अन्वय की सिद्धि के लिए अपने अर्थ का परित्याग कर अन्य अर्थ का बोधक हो जाता है, वहाँ लक्षण, लक्षण होती है। जैसे 'गग्ड.ायां घोषः' उदाहरण में 'घोष' अधिकरणत्व की सिद्धि के लिए गगा शब्द के लिये अपने 'जल–प्रवाह' रूप मुख्यार्थ का परित्याग कर देने से 'तट–रूप' अन्य अर्थ ही बोधित होता है। इसी तरह सारोपा और साध्यवसाना का लक्षण बताते हुए आचार्य मम्ट कहते हैं कि जहाँ उपमान और उपमेय के स्वरूप का अपह्नव किए बिना समानाधि ाकरण सम्बन्ध से दोनों शब्दतः कथित हो वहाँ 'सरोपा लक्षणा' होती है।

''सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा''

जैसे 'गौर्वाहीकः' उदाहरण में आरोप्यमाण 'गौ' तथा आरोपविषय 'वाहीक' दोनों शब्दतः उपात्त हैं अतः जहाँ गौणी सारोपा लक्षणा है।

इसके विपरीत जहाँ आरोप्यमाण उपमान द्वारा आरोप्यविषय उपमेय का निगरण किया जाता है वहाँ गौणी साध्यावसाना लक्षणा होती है जैसे 'गौरयम' में 'गौ' रूप विषयी के बाहर वाहिक रूप विषय का निगरण कर लिया गया अर्थात् दोनों का भेद छिपाकर अभेदारोप किया गया है अतः यहाँ गौणी साधयवसाना

लक्षणा है।

सारोपा–साध्यवनसाना भेद सादृश्य से गौणी लक्षणा होती है जबकि सादृश्येत्तर सम्बन्ध से शुद्धा लक्षणा होती है। जैसे 'आयुर्घृतम्' में आरोप्यमाण आयु तथा आरोप्यविषय 'घृत' दोनों शब्दतः उपात्त है अतः यहाँ शुद्ध सारोपा लक्षणा हैं। जबकि 'आयुरेवेदम्' ने इदं पद के द्वारा 'घृत' का निग्रण कर लिया गया अतः यहाँ शुद्ध साध्यवसाना लक्षणा है। इस प्रकार लक्षणा के षड्विध भेद हैं।

शब्द का तृतीय शक्ति व्यञ्जना है जिसका लक्षण आचार्य मम्मट ने इस प्रकार बतलाया है–

यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।।
फलेशब्दैकगम्येऽत्र व्यञ्जनान्नापरा क्रिया।
नाभिघा समयाभावात् हेत्वभावान्न लक्षणा।।
लक्ष्यं न मुख्यं माप्यत्र बाधे योगः फलेन नो।
न प्रयोजनमेताहिसन् न च शब्दः स्खलद्गतिः।।
एवमप्यनवस्था स्याद् या मूलक्षयकारिणी।
प्रयोजनेन सहितं लक्षणीयं न युज्यते।।

इस प्रकार शब्द की तीसरी शक्ति व्यञ्जना को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट बताते हैं कि जिस प्रयोजन विशेष की प्रतीति कराने के लिए लाक्षणिक शब्द का आश्रय लिया जाता है, केवल शब्द से ही गम्य अनुमान आदि से नहीं– उस फल या प्रयोजन के लिए व्यञ्जना के अतिरिक्त शब्द का और कोई व्यापार नहीं होता। 'गगायां घोषः' उदाहरण में लाक्षणिक शब्द का प्रयोग इस हेतु से किया गया है कि उससे शैत्य पावनत्वादि किसी प्रयोजन की प्रतीति हो सके। यह प्रयोजन कहीं गूढ़ तथा कहीं अगूढ़ व्यंग्य के रूप में होता है किन्तु इसकी लाक्षणिक शब्द की सर्वत्र प्रतीति होती है। कोई अनुमान आदि अन्य प्रमाण इसकी प्रतीति कराने में सफल नहीं है– 'नाभिधा समयाभावात्' अर्थात् समय या सक्डे.त का ग्रहण न होन के कारण प्रयोजन की प्रतीत कराने में अभिधा नामक शब्द व्यापार समर्थ नहीं है, क्योंकि 'गगायां घोषः' इत्यादि उदाहरण में जो पावनत्वादि धर्म, तट में प्रतीत होते हैं, उनमें 'गंगादि' शब्दों का संकेत नहीं किया गया है। अर्थात् अभिधा से उनका ज्ञान नहीं हो सकता।

लक्षणा के तीनों हेतुओं में से प्रत्येक के अभाव में लक्षणा भी नहीं हो सकती। मुख्यर्थबाध के अन्तर्गत 'गगा' पद के 'तटरूप' अर्थ की प्रतीति होने के बाद जो शैत्य–पावनत्वादि धर्म की प्रतीति होती है। यदि उसे शैत्य॰ लक्ष्यार्थ मान लें तो उससे पूर्व उत्पन्न 'तटरूप' अर्थ को मुख्यार्थ मानना पड़ेंगा परन्तु यह लक्ष्यार्थ है, मुख्यार्थ मान ही लिया जाय तो लक्षणा होने के पूर्व उसका बाध होना चाहिए। यह बाध भी नहीं होता क्योंकि 'तट' पर 'घोष' तो रहता ही है, अतः लक्षणा होने के प्रश्न ही नहीं उठता। 'गगातटे घोषः' तो को मुख्यार्थ मानने पर इसका बाध ा न होने से लक्षणा न हो सकती न व्यञ्जना ही। लक्षणा का दूसरा कारण 'लक्ष्यार्थ' का मुख्यार्थ के साथ सम्बन्ध है। यदि शैत्य–पावनत्वादि धर्मों में लक्ष्यार्थ माना जाय तो 'तट' को मुख्यार्थ मानना होगा। उस स्थिति में मुख्यार्थ रूप 'तट' के साथ लक्ष्यार्थरूप शैत्य–पावनत्वादि का सम्बन्ध होना चाहिए परन्तु शैत्य–पावनत्व का समय 'गगा–प्रवाह' के साथ है, 'तट' के साथ नहीं, इसलिए लक्षणा का दूसरा हेतु भी सम्भव नहीं।

लक्षणा का तृतीय हेतु 'रूढ़ि या प्रयोजन' भी यहाँ नहीं क्योंकि शैत्य–पावनत्वादि को यदि यहाँ लक्ष्यार्थ माने तो उसमें अन्य किसी को प्रयोजन मानना होगा जो कि अनवस्था प्रसंग में सम्भव नहीं है। 'लक्ष्यं न मुख्यं पाप्यत्र बाधे योगः फलेन नो' इत्यादि कारिका में स्खलद् गतिः का अभिप्राय यह है कि गंगा शब्द, शैत्य पावनत्व रूप प्रयोजन को बोधित कराने में बाधित अर्थ नहीं है। बिना मुख्यार्थ बाध के ही वह शैत्य–पावनत्व को व्यक्त कर सकता है, मुख्यार्थ बाध के साथ होने पर वट 'शैत्य–पावनत्व' को नहीं अपितु 'तट' को बोधित करता है।

प्रश्न उठता है कि यदि यह माना जाय कि पावनत्वादि से युक्त तट ही लक्ष्यार्थ से उपस्थित होता है, तो क्या हानि है। इसके उत्तर में आचार्य मम्मट कहते हैं कि प्रयोजन के सहित पावनत्वादि 'तट' को लक्ष्यार्थ मानना उचित नहीं है क्योंकि 'ज्ञानस्यविषयों ह्यन्यः फलमन्यदुदाहृतम्।' अर्थात् ज्ञान का विषय, ज्ञान के फल से भिन्न होता है 'विषय'

ज्ञान का कारण होता है इसलिए उसकी स्थिति ज्ञान से पहले रहती है तथा फल, ज्ञान का कार्य होता है, इसलिए उसकी उत्पत्ति ज्ञान के बाद होती है। लक्षणाजन्य ज्ञान के विषय 'तटादि' और उसके फल शैत्य–पावनत्व आदि की स्थिति भी अलग है। उन दोनों की समकालीन उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिए पावनत्वादि प्रयोजन के साथ 'तट रूप' लक्ष्यार्थ मानना युक्तिसंगत नहीं है। इस सन्दर्भ में नैयायिक और मीमांसक दोनों स्वीकार करते हैं कि ज्ञान का विषय और उसका फल दोनों ही अलग–अलग है। 'घटज्ञानवानहम इस रूप ज्ञान के फल को स्वीकार करते हैं जबकि मीमांसक घट इस विषय में ज्ञानता रूप फल को स्वीकार करता है। नैयायिक अनुव्यवसाय रूप हैं। इसमें अन्तर केवल इतना है कि मीमांसक 'घट ज्ञान' के फल 'प्रकटता' को घट का धर्म मानता है जअकि नैयायिक 'अनुव्यवसाय' रूप फल को विषय का धर्म न मानकर आत्मा का धर्म मानता है। अर्थात् लक्षणाजन्य ज्ञान का विषय 'तटादि' रूप अर्थ तथा 'शैत्य–पावनत्वादि' फल का विषय एक दूसरे से नितान्त भिन्न है। इस प्रकार शैत्य पावनत्वादि तथा तटादि दोनों को लक्ष्यार्थ मानता युक्तिसंगत नहीं है।

इस प्रकार शब्द की तीनों शक्तियों का विशिष्ट महत्त्व है यदि ये तीनों न होती तो शायद हम एक ही ढंग से अपनी अभिव्यक्ति कर पाते। इसलिए ये तीनों शब्द शक्तियाँ संप्रेषण की अनन्य आधार हैं।